स्वराज्य दल के संस्थापक : देशबंधु चितरंजन दास

अमर कांत*

देशबन्धु चितरंजन दास (1870–1925) कवि, विधिवेत्ता, ईश्वर–भक्त तथा देश के एक महत्तम राजनीतिक नेता तथा योद्धा थे। उनका जन्म कलकत्ता में 5 नवम्बर, 1870 को हुआ था और 16 जून, 1925 को दार्जिलिंग में उनका स्वर्गवास हुआ। जब वे लन्दन में (1890–1892) विद्यार्थी थे, उस समय उन्होंने दादाभाई नौरोजी के चुनाव अभियान में भाग लिया था। 1908 ई० में चितरंजन दास ने अलीपुर बम षड़यन्त्र अभियोग में अरविन्द घोष की शानदार पैरवी की। उन्होंने पाँच कविता–संग्रह प्रकाशित किये – 'मलंच' (1895) 'माला' (1904,) 'अन्तर्यामी (1915), 'किशोर–किशोरी' तथा 'सागर–संगीत' (1913)। उन्होंने 'नारायण' नामक एक बंगाली मासिक पत्रिका प्रारम्भ की। 1915 में वे बंगला साहित्य सम्मेलन के पटना अधिवेशन के सभापति चुने गये। उन्होंने कुछ वैष्णव कीर्तन गीत भी लिखे। अक्टूबर, 1923 ई० में उन्होंने अपना पत्र 'फॉरवर्ड' आरम्भ किया।

1917 ई० में चितरंजन दास ने बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के भवानीपुर अधि ावेशन का सभापतित्व किया। 1918 ई० में वे बम्बई में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में सम्मिलित हुए और मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के विरोध में भाषण दिया। वे उस कांग्रेस जाँच समिति के सदस्थ थे, जो 1919 ई० में जालियाँवाला बाग हत्याकांड के सम्बन्ध में नियुक्त की गयी थी। वे 1919 ई० के भारत शासन अधिनियम के विरूद्ध थे। अमृतसर कांग्रेस में उन्होंने उन लोगों का नेतृत्व किया, जो उस अधिनियम की स्वीकृति के तथा मॉण्टेग्यू के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के विरूद्ध थे। चितरंजन दास उच्चकोटि के वकील थे। वे परिषदों के द्वारा आन्दोलन चलाने के पक्ष में थे। इसलिए सितम्बर 1920 ई० में उन्होंने महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तावित असहयोग आन्दोलन का विरोध किया। वे असहयोग के प्रस्ताव का विरोध करने के लिए नागपुर अधिवेशन में भी एक बड़ा जत्था लेकर पहुँच थे। किन्तु अन्ततोगत्वा उन्होंने गाँधीजी का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। 1921 ई० से वे शरीर, मन तथा आत्मा से राजनीतिक कार्यकलाप में तल्लीन हो गये। देश की जनता उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उन्हें 'देशबन्धु' कहने लगी थी। 1921 ई० में बंगाल की कांग्रेस ने उन्हें सरकार के विरूद्ध आन्दोलन का संचालन करने के लिए अधिनायक चुना। 11 दिसम्बर, 1921 ई० को उन्हें कारागार में डाल दिया गया और जुलाई 1922 ई० में वे मुक्त कर दिये गये। उन्हें अहमदाबाद कांग्रेस का सभापित चुना गया। किन्तु उस समय उनके अभियोग का न्यायिक परीक्षण हो रहा था और वे कारागार में थे, इसलिए वे अधिवेशन की अध्यक्षता न कर सके। इसलिए हकीम अजमल खाँ ने कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व किया। कारागार से मुक्त होने के बाद चितरंजन दास कांग्रेस के गया अधिवेशन के सभापति चुन लिये गये।

***एम.ए. (इतिहास), यू.जी.सी. नेट ग्राम–जानीपुर बाज़ार, पोस्ट–शोरमपुर, जिला–पटना (बिहार)**

1923 ई० में चितरंजन दास ने 'अखिल भारतीय स्वराज्य दल' की स्थापना की। वे स्वयं उसके अध्यक्ष तथा मोतीलाल सचिव चुने गये। दिसम्बर, 1922 ई० में गया में जो घोषणा की गयी, उसमें दल का नाम 'कांग्रेस खिलाफत स्वराज्य दल' रखा गया। घोषणा में कहा गया कि 'अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त पर कार्य करते हुए सब शान्तिमय तथा उचित तरीकों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना' दल का उद्देश्य है।[1] दास तथा नेहरू के अतिरिक्त दल के अन्य प्रमुख सदस्य थे – विट्ठल भाई पटेल, हकीम अजमल खाँ, एन० सी० केलकर, एम० आर० जयकर, वी० अभ्यकर तथा सी० एस० रंगा अय्यर। स्वराज्य दल ने प्रान्तीय परिषदों तथा भारतीय विधानसभा के चुनाव लड़े। दास प्रतिपक्ष के दुर्धर्ष नेता के रूप में प्रकट हुए तथा बंगाल की सरकार के लिए सचमुच आतंक का कारण बन गये। अपनी अत्यन्त हृदयग्राही तथा भावुकतापूर्ण वक्तृता के द्वारा वे सरकार के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों को परास्त कराने में सफल रहे, जिसके कारण बंगाल के गवर्नर को उनमें से कुछ प्रस्तावों को पारित कराने के लिए 'प्रमाणन' के अधिकार का प्रयोग करना पड़ा। दिल्ली में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में स्वराज्य दल तथा परिवर्तन–विरोधियों में समझौता हो गया। 1924 ई० में महात्मा गाँधी तथा चितरंजन दास के बीच समझौता हो गया, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस ने स्वराज्य दल को अपने परिषदों में प्रवेश करने वाले एक पक्ष के रूप में स्वीकार कर लिया। 1925 ई० में हुए कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में स्वराज्य दल कांग्रेस में विलीन हो गया। 1924 ई० में चितरंजन दास कलकत्ता नगर महापालिका के प्रमुख निर्वाचित हुए।

चितरंजन दास स्वराज्य के लिए संघर्ष करने वाले निर्भीक योद्धा थे। वे स्वार्थरहित तथा साहसी थे। वे राष्ट्र के एक महानतम् प्रतिनिधि थे। साथ ही साथ वे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ भी थे और उनके राजनीतिक विचारों में मौलिकता थी। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशनों में, बंगाल की परिषद् तथा सार्वजनिक सभाओं में जो भाषण दिये, उनसे प्रकट होता है कि उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी और वे तत्कालीन राष्ट्रीय तथा अन्तरर्राष्ट्रीय सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को भली–भाँति समझते थे।

चितरंजन दास के राजनीतिक विचारों का दार्शनिक आधार–चितरंजन दास ने एक ब्रह्मसमाजी के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। किन्तु एकेश्वरवाद तथा बुद्धिवाद उनकी आत्मा को सन्तुष्ट न कर सके। अतः आगे चलकर वे वैष्णव हो गये। उनके हृदय में अपने को सर्वोच्च विकल्पातीत घनीभूत ज्योतिस्वरूप महागगन के समान परमशुभ्र सत्ता में लय कर देने की उत्कट आकांक्षा थी।

दास वैष्णव थे, अतः वे सम्पूर्ण इतिहास तथा विश्व को अखण्ड, प्रकाशरूप ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते थे। ईश्वर प्रकृति तथा इतिहास में व्याप्त है। वह ब्रह्मण्ड के भीतर है। जीवन से पृथक ईश्वर की कल्पना नहीं की जा सकती और न ईश्वर से पृथक जीवन की कल्पना की जा सकती है। हेगेल तथा अरविन्द की भाँति दास का भी विश्वास था कि इतिहास ईश्वर की आभा का क्रीड़ांगन है। उन्होंने कहा, 'सत्य की कसौटी तार्किक परिभाषा नहीं है। सत्य की कसौटी उस सर्वबाध्यकारी शक्ति में है, जिसके द्वारा वह अपनी प्रतीति करा देता है। आप सत्य को तभी जानते हैं, जब आपको उसकी अनुभूति हो जाती है। ईश्वर की परिभाषा नहीं की जा सकती और न सत्य की ही परिभाषा की जा सकती है, क्योंकि सत्य ईश्वर की अभिव्यक्ति है।... मैं इतिहास को ईश्वर की अभिव्यक्ति मानता हूँ। मैं हर मनुष्य के व्यक्तित्व को, राष्ट्र और मानव जाति को जो एक–दूसरे के जीवन में योग देते हैं, ईश्वर की अभिव्यक्ति मानता हूँ। मैं समझता हूँ कि व्यक्ति तथा राष्ट्र स्वराज्य प्राप्त करके ही अपने को पूर्ण कर सकते हैं। मैं राष्ट्रीय कार्यकलाप को उस मानव जाति की सेवा का आधार मानता हूँ, जो स्वयं ईश्वर की अभिव्यक्ति है।'[2] दास विश्व को ब्रह्म की लाला मानते थे। ईश्वर का ऐश्वर्य अपने को चेतन और अचेतन दोनों की सत्ता के द्वारा व्यक्त करता है। प्रकृति तथा इतिहास ईश्वर की अभिव्यक्ति है। अतः विश्व की सभी वस्तुएँ अनिवार्यतः दैवी गुणों से मुखरित होने लगती हैं। ईश्वर की लीला अपने को विविधता तथा सामंजस्य दोनों के रूप में व्यक्त करती है। ईश्वर इतिहास है तथा विश्व की उन अगणित घटनाओं का एकमात्र दृष्टा है, जिनसे इतिहास का निर्माण होता है।[3] दास लिखते हैं, 'सब सत्यों का सार यह है कि ईश्वर की बाह्य लीला अपने को इतिहास में व्यक्त करती है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा मानव जाति उसी लीला के विभिन्न पक्ष हैं। स्वराज्य की कोई योजना, जो व्यावहारिक दृष्टि से सत्य हो और वास्तव में व्यावहारिक हो, इसके अतिरिक्त अन्य किसी जीवन दर्शन पर आधारित नहीं हो सकती। इस सत्य का साक्षात्कार करना ही समय की सर्वोच्च आवश्यकता है। यही भारतीय चिन्तन का प्राण है और यही वह आदर्श है, जिसकी ओर अर्वाचीन यूरोप का चिन्तन धीरे–धीरे किन्तु निश्चित रूप से अग्रसर हो रहा है।[4] चितरंजन के अनुसार वैष्णवों की यह धारणा कि इतिहास में ईश्वर व्याप्त है, वस्तुतः स्वतन्त्रता का सिद्धान्त है। हर व्यक्ति, चाहे वह किसी जाति और पंथ का हो, इतिहास की पुनीत प्रक्रिया अर्थात् लीला में साझीदार है। दास लिखते हैं, 'क्या पहले कभी मानव आत्मा की गरिमा तथा स्वतन्त्रता का इससे अधिक श्रेष्ठ सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है ?'[5] इतिहास की इस हेगेलवादी वैष्णवपंथी धारणा पर ही दास ने अपने स्वराज्य के सिद्धान्त का निर्माण किया।

चितरंजन दास के राष्ट्रवादी विचार–21 अप्रैल, 1917 ई० को दास ने कलकत्ता में बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन का सभापतित्व किया। अपने भाषण में उन्होंने

प्रान्त की बढ़ती हुई दीनता तथा पतितावस्था पर दुःख प्रकट किया। उन्होंने भोग–विलास के पाश्चात्य आदर्श का विरोध किया और त्याग की आवश्यकता पर बल दिया। वे देश के प्राचीन आदर्शवाद को पुनर्जीवित करना चाहते थे और राजनीति, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र की समस्याओं का उसी दृष्टि से अनुशीलन करने के पक्ष में थे। वे जीवन की समग्रता को विभिन्न भागों में बाँटने की पाश्चात्य प्रवृत्ति के विरूद्ध थे। उनका कहना कि राष्ट्रीय समस्याओं का वही समाधान स्थायी होगा जो भारत की सहज प्रकृति के आधारभूत तत्त्वों पर आधारित होगा। दास ने गाँवों के पुनरूत्थान तथा कृषि–व्यवस्था के पुनर्निर्माण पर बल दिया। वे चाहते थे कि लोग विदेशी वस्तुओं का आयात बन्द कर दें। उन्होंने चेतावनी दी कि पाश्चात्य ढंग का उद्योगवाद देश के लिए घातक होगा। उनका कहना था कि बंगला के माध्यम से राष्ट्रीय ढंग की प्रभावकारी शिक्षा देकर ही प्रान्त की वास्तविक प्रगति की जा सकती है।

1921–22 ई० में चितरंजन दास ने अहिंसात्मक असहयोग का समर्थन किया। इस कार्यप्रणाली को उन्होंने राष्ट्र के आत्म–साक्षात्कार की प्राप्ति के लिए एक नैतिक तथा आध्यात्मिक साधन बतलाया। 1922 ई० में गया की कांग्रेस में उस व्यक्ति को, जो किसी समय कलकत्ता का प्रमुख बैरिस्टर रहा था, गाँधीजी की शैली में आत्म–शुद्धीकरण के वेदान्ती बौद्ध सिद्धान्त का उपदेश देते हुए देखना एक अद्‌भुत बात थी – 'राष्ट्रीय दृष्टिकोण से असहयोग की पद्धति का अर्थ यह है कि राष्ट्र अपनी शक्ति पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करे और अपनी शक्ति के बल पर खड़ा होने का प्रयत्न करे। आचारनीतिक दृष्टि से असहयोग का अर्थ है – आत्म–शुद्धीकरण की पद्धति अर्थात् उन कार्यों से दूर रहना, जिनसे राष्ट्र का विकास को और उसके फलस्वरूप मानव जाति के कल्याण को आघात पहुँचता हो। आध्यात्मिक दृष्टि से स्वराज्य का अभिप्राय उस पृथकत्व से है, जिसे साधना की भाषा में 'प्रत्याहार' कहते हैं। इस प्रकार का पृथकत्व इसलिए आवश्यक है कि हम अपनी आत्मा की गहराई में से राष्ट्र की आत्मा को उसके समग्र ऐश्वर्य के साथ निकाल कर बाहर रख सकें।' दास द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद की यह वेदान्ती धारणा विवेकानन्द, विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त के अनुरूप है। स्वराज्य के सम्बन्ध में दास की धारणा बहुत ही व्यापक और उदात्त थी।[6] वे स्वराज्य को राजनीतिक स्वतन्त्रता की यान्त्रिक तथा लगभग निषेधात्मक धारणा से अधिक पूर्ण, सार्थक तथा व्यापक मानते थे। दास का मन बन्धनमुक्त था और उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। उन्होंने इस बात की आवश्यकता को भलीभाँति समझ लिया था कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण उन पुरानी सड़ी–गली व्यवस्थाओं का उन्मूलन करके किया जाना चाहिए जो देश के सामाजिक एकीकरण के मार्ग में बाधा डालती हैं। बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के फरीदपुर अधिवेशन में उन्होंने कहा था, 'किन्तु हमें जिस वस्तु की आवश्यकता है वह केवल स्वतन्त्रता नहीं है, हमें

स्वराज्य की स्थापना करनी है।... एकीकरण का यह काम लम्बी प्रक्रिया है, बल्कि बहुत कष्टसाध्य प्रक्रिया भी हो सकती है, किन्तु इसके बिना स्वराज्य सम्भव नहीं हो सकता। इसी में महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रय की बुद्धिमत्ता है। मैं उस कार्यक्रम से पूर्ण सहमत हूँ और मैं अपने देशवासियों से बलपूर्वक अनुरोध किये बिना नहीं रह सकता कि वे इस कार्यक्रम को केवल बौद्धिक स्वीकृति न दें, बल्कि उसको अधिकाधिक रूप में कार्यान्वित करके उसका व्यावहारिक समर्थन भी करें। दूसरे, स्वतन्त्रता से हमें व्यवस्था के उस विचार का बोध नहीं होता जो स्वराज्य का सार है। मेरी समझ में स्वराज्य में पहला निहित अभिप्राय यह है कि हम भारतीय जनता के विभिन्न तत्त्वों का एकीकरण करने के मामले में स्वतन्त्र हो; दूसरे, इस विषय में हम राष्ट्रीय मार्ग का अनुकरण करें... इसका अर्थ यह नहीं है कि हम लौटकर दो हजार वर्ष पीछे चले जाये बल्कि हमें राष्ट्र की सहज प्रकृति तथा स्वभाव को ध्यान में रखते हुए आगे की ओर बढ़ना है... तीसरे, हमारे सामने जो काम है, उसमें कोई विदेशी शक्ति बाधा न डाले।' चितरंजन द्वारा निरूपित स्वराज्य का यह व्यापक आदर्श स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में प्रतिपादित आदर्श से तनिक भिन्न था। स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं ने स्वराज्य तथा स्वाधीनता अथवा स्वतन्त्रता में भेद किया था। उन्होंने स्वराज्य को स्वशासन के समतुल्य माना था और स्वाधीनता तथा स्वतन्त्रता का अर्थ विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति लगाया था। चितरंजन दास ने कहा कि स्वाधीनता एक निषेधात्मक धारणा है, क्योंकि उसका अर्थ पराधीनता का अभाव है। इस प्रकार दास ने स्वराज्य को अधिक रचनात्मक अर्थ प्रदान किया। उनके स्वराज्य की धारणा में स्वशासन सम्मिलित है, यदि उसका अर्थ हो, 'अपना शासन और अपने लिए'।

दास का स्वराज्य की धारणा से गहरा तथा उत्साहपूर्ण अनुराग था। किन्तु स्वराज्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने क्रान्तिकारी हिंसा तथा अराजकवादियों की कार्यप्रणाली की स्वीकृति नहीं दी। 1924 ई० में बंगाल में हिंसात्मक कार्यवाहियाँ पुनः उमड़ पड़ी थीं। दास ने उनकी भर्त्सना की। फिर भी वे इतने यथार्थवादी तथा निष्ठावान थे कि उन्होंने हिंसात्मक कार्यवाहियाँ करने वाले युवकों के श्रेष्ठ तथा आवेशपूर्ण राजनीतिक आदर्शवाद को श्रद्धांजलि अर्पित की। किन्तु दास ने धार्मिक शिक्षाओं के आधार पर तथा स्वराज्य दल की ठोस राजनीतिक कार्यप्रणाली को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक हत्या तथा बाध्यकारी हिंसा की पद्धति का स्पष्ट रूप से विरोध किया।[7] उन्होंने तत्कालीन सरकार को भी सलाह दी और उससे अनुरोध किया कि वह दमन नीति का जो स्वभावतः आतंकवादी हिंसा को जन्म देती है, अनुसरण न करें।

दास उत्कट राष्ट्रवादी थे और देश की पूजा में उन्होंने एक वैष्णव के उत्साह और आवेश का परिचय दिया। उनके राजनीतिक व्यक्तित्व में हमें एक प्रशिक्षित वकील के–से शान्त तथा यथार्थवादी चिन्तन और स्वराज्य के लिए भावुकता तथा आवेश से युक्त उत्कण्ठा का समन्वय देखने को मिलता है। दास की भावुक आत्मा

'आत्म–साक्षात्कार, आत्म–विकास तथा आत्म–पूर्णता के अवसर के लिए' पुकार रही थी। उनकी स्वराज्य की धारणा बड़ी व्यापक थी। उनकी मान्यता थी कि राजनीतिक सत्ता का आधार शासितों की सम्पत्ति होना चाहिए। वे यह भी मानते थे कि क्रूर कानूनों का प्रतिरोध करना, मनुष्य का अलंघीय अधिकार है। उन्हें मूल अधिकारों के सिद्धान्त में भी विश्वास था। इसके अतिरिक्त उनके लिए स्वराज्य का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं था। वे मानसिक तथा नैतिक सामंजस्य तथा विकास को भी स्वतन्त्रता का अभिन्न अंग मानते थे। वे आधुनिक भारत के उन थोड़े–से नेताओं में थे, जिन्हें आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन की मुख्य धाराओं का अच्छा ज्ञान था। इसलिए उनकी राजनीतिक कल्पना तथा आदर्श राजनीतिक सिद्धान्त के ज्ञान पर आधारित थे। चितरंजन दास का व्यक्तित्व देश की परम्पराओं में दृढ़ता से बद्धमूल था, किन्तु साथ ही साथ उन्हें विश्व राजनीति का अच्छा ज्ञान था और एशियाई संघ तथा मानव जाति के संघ के सम्बन्ध में उन्होंने एक पैगम्बर की भाँति पहले से स्वप्न देख लिया था।

चितरंजन दास भारत की राजनीतिक तथा सांविधानिक कार्यविधि को ही भलीभाँति नही समझते थे, उन्हें देश की आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में भी अच्छी सूझबूझ थी। 1922 ई० में उन्होंने घोषणा की कि मैं 'जनता के लिए नब्बे प्रतिशत लोगों के लिए स्वराज्य' चाहता है। इसलिए 'परिवर्तन नहीं' की नीति तथा रचनात्मक कार्यक्रम के समर्थक उन्हें समाजवादी समझते थे। चितरंजन दास जनता के पक्षपोषक थे। यद्यपि साम्यवादियों ने उन पर मध्यवर्गीय (बूर्जुआ) संसदवादी होने का आरोप लगाया था, किन्तु वस्तुतः उन्हें पूँजीपति वर्ग के हितों से कोई प्रयोजन नहीं था। 1 नवम्बर, 1922 को देहरादून में उन्होंने घोषणा की थी, 'स्वराज्य जनता के लिए होना चाहिए और जनता द्वारा ही प्राप्त किया जाना चाहिए।' वे जनता के लिए स्वराज्य के आदर्श में ईमानदारी से विश्वास करते थे। गया कांग्रेस के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने श्रमिकों तथा किसानों के संगठनों का समर्थन किया।

सन्दर्भ सूची :–

1. M. N. Roy - One Year of Non-Cooperation, pg. 180
2. चितरंजन दास का 1922 ई० की गया कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण।
3. C. R. Das's Speeches, pg. 209
4. चितरंजन दास का 1922 की गया कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण।
5. C. R. Das's Speeches, pg. 203
6. अपने गया के अध्यक्षीय भाषण में चितरंजन दास ने हिंसात्मक क्रान्तियों की निरर्थकता बतलायी थी।
7. चितरंजन दास के मार्च 29 तथा अप्रैल 4, 1925 के प्रेस–वक्तव्य।

~~**~~